

महाभारतकालीन शिक्षा का स्वरूप एवं ध्येय

राणा पंकज कुमार सिंह

शोध छात्र, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

महाभारत में शिक्षा का स्वरूप जानने के लिए ऐतिहासिक तथ्यों उसके काल—निर्धारण के विभिन्न मतों का वर्णन आवश्यक है।

महाभारत आर्यों का प्राचीन एवं श्रेष्ठ महाकाव्य है। संस्कृत साहित्य में महाभारत को इतिहास पुराण माना गया है। इस ग्रंथ के रचयिता ऋषि व्यास माने गये हैं। महाकाव्य की रचना के विषय में विद्वानों का मत है कि वे किसी एक युग में, या एक ही लेखक के द्वारा लिखित नहीं हैं। इसके मूल ग्रंथ में समयानुसार संशोधन, परिवर्द्धन और परिवर्तन भी किए गए हैं। कई विद्वानों ने इस कार्य में योगदान किया है।

महाभारत महाकाव्य में अठारह पर्व और एक लाख श्लोक हैं। इस काव्य की व्यापकता के संबंध में विद्वानों में एकमत नहीं है। संस्कृत के पाश्चात्य विद्वान मैकड़ानल्ड का विचार है कि मूल महाभारत में केवल 20 हजार श्लोक थे। अलग—अलग युगों में भिन्न—भिन्न विद्वानों ने इसमें परिवर्तन किये हैं, महाभारत का उद्देश्य एक ओर तो धार्मिक है वहीं दूसरी ओर ऐतिहासिक एवं शैक्षणिक विशेषता का भी है। इस महाकाव्य में देश के प्राचीन वीरों और विरांगनाओं के पारस्परिक प्रण और विद्रोह, जय और पराजय की गाथाएँ तथा प्राचीन प्रचलित अनुश्रुतियों की संहिताएँ हैं। महाभारत के अध्ययन से इस तथ्य की जानकारी प्राप्त होती है कि किस प्रकार एक छोटे से महत्वहीन गृह—कलह से भारत में आर्यों की दीर्घकालीन विवादग्रस्त समस्याएँ प्रज्वलित हो उठी।

महाभारत का रचनाकाल:—

महाभारत महाकाव्य के रचनाकाल के संबंध में मत—विभेद है। मूल रूप से कुरुक्षेत्र के युद्ध का विद्वानों ने जो वर्णन किया है उसे 2000 ई० पू० और 1000 ई० पू० के मध्य माना है। महायुद्ध में वीर गाथाओं का वर्णन, राजाओं के प्रशसनों, पुरोहितों, चारणों, द्वारा अपने गीत पद्यों में ईशा पूर्व एक हजार वर्ष के पूर्व ही किया गया है। इस महाकाव्य की रचना का आधार गाथाओं और पद्यों को ही माना गया है।

वैदिक ग्रंथों में उसी काल के विशिष्ट पुरुष और नारियों की चर्चा है, परन्तु वैदिक ग्रंथ में पांडु राजा का उल्लेख नहीं मिलता है। इस ग्रंथ में अर्जुन, परीक्षित जनमेजय का उल्लेख है। इसी प्रकार आश्वलायन के गुह्यसूत्र 3—3—1 में महाभारत का, तथा सांख्यायन के गुह्यसूत्र में महाभारत के उपदेशक वैशम्पायन, जैमिनी आदि का वर्णन है। इन तथ्यों के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मूल महाभारत का रचनाकाल सुत्र युग से पूर्व का है।

भाषा की दृष्टि से भी इसकी पौराणिकता पर विचार किया जाता है। महाभारत की भाषा कहीं—कहीं “ब्राह्मणो” एवं “उपनिषदों” की है। दोनों भाषा में समानता है। महाभारत का रचनाकाल 500 या 400 ई० पूर्व का माना जा सकता है। मैकड़ॉनल्ड ने इसे 500 ई० पूर्व और विन्टरनिट्ज ने इसे 400 ई० पूर्व माना है।

श्री आर० पी० भंडारकर का मत है कि इसा पूर्व 500 तक महाभारत एक प्रसिद्ध धार्मिक ग्रंथ बन चुका था। इसा पूर्व की दूसरी शताब्दी तक पूर्ण हो चुका था। कई विद्वान् ने इसे ई० सन् 300 वर्ष पूर्व से 100 वर्ष पूर्व के युग में मानते हैं।

महाभारत महाकाव्य में अनेक वीर गाथाओं, आख्यानों, धार्मिक तथा दार्शनिक विचारों और उपदेशों को सम्मिलित कर लिया गया। समय—समय पर इसमें अनेक प्रक्षेप जोड़े गये हैं। फलतः महाभारत विशाल ग्रंथ हो गया है। उसमें लगभग एक लाख श्लोक हैं। विश्व का सबसे बड़ा ग्रंथ है। विस्तार की दृष्टिकोण से महाभारत की समानता कोई ग्रंथ नहीं कर सका है। यूनानियों के महाकाव्य इलियड और ओडेसी दोनों मिलाकर इसका आठवाँ भाग है। महाभारत के कुछ भागों में भारत में रहने वाली विदेशी जातियों, यूनानी, शक, पल्लव आदि का वर्णन है। ये जातियाँ भारत में ई० पू० पहली और दूसरी शताब्दियों में आई। इससे हमें यह ज्ञात होता है कि इसा पूर्व दूसरी शताब्दी में पतंजलि कृत “महाभाष्य” ग्रंथ के समय में महाभारत का वर्तमान रूप सबों को ज्ञात था। महाभारत में वैष्णव और शैव मतों का विशद विवरण है और ये मत ईसा के बाद की प्रारंभिक सदियों में प्रचलित थी। गुप्तकाल में तो ये विचार अपनी उन्नति के शिखर पर थे। भारत में और भारत के बाहर कंबोडिया में पाँचवीं और छठी शताब्दियों के शिलालेखों में महाभारत का धार्मिक ग्रंथ के रूप में उल्लेख है। इन तथ्यों ये यह स्पष्ट हो जाता है कि ई० सन् की पाँचवीं शताब्दी के पूर्व ही महाभारत का परिवर्तन और परिवर्द्धन पूरा हो चुका था।

इतिहासकार राधा कुमुद मुखर्जी का मत है कि महाभारत का यह परिवर्द्धित रूप महाभारत काल में शिक्षण संस्थाएँ, धार्मिक और आध्यात्मिक विषय के बहुमूल्य सामग्री के प्रकटीकरण के अतिरिक्त तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक समस्या का विवरण प्रस्तुत करता था।

प्राचीन काल से भारतीय समाज में शिक्षा अथवा विद्या का स्वरूप अत्यंत ज्ञानपरक रहा है, जिसमें व्यक्ति के लौकिक और पारलौकिक जीवन के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी। क्योंकि ज्ञान की प्राप्ति के द्वारा ही मनुष्य का नैतिक विकास संभव है और इसी के द्वारा वह अपने उत्तरदायित्वों को समझता है तथा विवेक और अविवेक का निर्णय करते हुए कर्म करता है। विद्या मनुष्य का तृतीय नेत्र है। (शांतिपर्व— 317 / 9)¹ जिसके द्वारा वह जीवन दर्शन पाता है तथा सत्य—असत्य का निर्णय करता है। सत्य मनुष्य को प्रगति की ओर ले जाता है और असत्य से उसका पतन होता है। सत्य और असत्य, विद्या और अविद्या तथा ज्ञान और अज्ञान का निराकरण तब तक नहीं हो सकता जब तक कि व्यक्ति स्वतः ज्ञान प्राप्ति का प्रयास नहीं करता या अपने पूर्वजों के द्वारा प्राप्त की गई ज्ञान परम्परा का अध्ययन कर और तदनुकूल आचरण कर उसकी वृद्धि कर हम ऋषि ऋण से उऋण हो सकते हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति के लिए विद्या अर्जन आवश्यक है। ऋग्वेदकालीन समय में भौतिक की अपेक्षा बौद्धिक ज्ञान का महत्व था। उस युग में ऊँचे विचार, ज्ञान की महिमा, त्यागमय जीवन, अध्यात्मिक चिंतन एवं भौतिक आकर्षण के प्रति विरक्ति मनुष्य जीवन के मूल्य थे। ऋग्वेद के गायत्री जैसे मंत्र ज्ञान के उच्चतम आधार थे। सत्पथ ब्राह्मण में कहा गया है कि स्वाध्याय एवं प्रवचन का अनुगमन करने से मनुष्य का मन एकाग्र हो जाता है। उसकी इन्द्रियाँ संयमित हो जाती हैं। वह प्रज्ञावान हो जाता है, यशस्वी हो जाता है और संसार के अभ्युदय में लग जाता है।(ऋग्वेद—164—166)² विद्या ‘विद्’ धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ है जानना या ज्ञान। (श. ब्रा.—2.2.26)³ विद्या के लिए एक दूसरा शब्द है “शिक्षा”। यह शब्द “शास्” धातु निष्पन्न है जिसका अर्थ है शासन करना। (अ.वे. 11.5.26)⁴ अतः शिक्षा वह है जो मनुष्य को शिक्षित एवं अनुशिष्ट करती है। इसके द्वारा मनुष्य अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखने में समर्थ होता है तथा वह सदाचारी बनता है, शिक्षा को इसी कारण विनय भी कहा गया है जो ‘नय’ धातु से बना है (ते. स. 6.3.16)⁵ एवं जिसका अर्थ है नियंत्रित करना, अनुशिष्ट बनाना या ले चलना।

शिक्षा की प्राप्ति व्यक्ति के लिए इसलिए आवश्यक है कि वह अपना विकास करते हुए उच्च आदर्शों का पालन करते हुए समाज का एक उपयोगी सदस्य बन सके। समाज में वह नैतिक आदर्शों एवं व्यवहारों तथा सदाचरण की स्थापना कर सके एवं अन्य लोग उसके चरित्र का अनुगमन कर सके। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को सदाचारी बनाना है। (शत्र ब्रा.- 11.5.7.5)⁶ सदाचार ज्ञान से होता है। अतः ज्ञान की प्राप्ति जीवन का एक लक्ष्य है। ज्ञान में ही सबकी परिसमाप्ति होती है। इसकी सीमा से बाह्य कुछ भी नहीं है। अतः इसी की प्राप्ति की जानी चाहिए। अज्ञान ही शोक है। अविवेकी एवं पापकर्ता लोग भी ज्ञान पाकर विवेकी और पुण्य कर्म बन जाते हैं। ज्ञानरूपी अग्नि से सब कर्म जलकर भष्म हो जाते हैं।

ज्ञान के समान पवित्र वस्तु कुछ भी नहीं है। नहिं ज्ञानन सदृशं पवित्र मिव विद्यते। सब कर्मों का अन्त ज्ञान में ही होता है।
विद्या के प्रति धारणा :-

प्राचीन काल से ही विद्या के प्रति लोगों की धारणा ऊँची रही है। यह एक सार्वभौमिक सत्य है, अतः ज्ञान प्राप्त करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। उपनिषदों में यह माना गया है कि विद्या के द्वारा ही अमृत तत्व की प्राप्ति होती है। यह ब्रह्म विद्या है, यानि ईश्वर के संबंध में ज्ञान प्रदान करने वाली विद्या, जिसे 'परा' विद्या की संज्ञा दी गई है। दूसरी ओर अविद्या है, जिसको प्राप्त करने से मनुष्य न तो इस लोक में सुखी होता है और न परलोक में ही। वह मनुष्य को अंधकार की ओर ले जाती है जिसे 'अपरा' कहते हैं।

(मु. उ.- 3401/1/4)⁷ इस प्रकार 'परा' विद्या ईश्वर की अनुभूति कराती है और 'अपरा' विद्या भौतिक और लौकिक विषयों का ज्ञान कराती है। द्रष्टव्य— राय, बी. पी., सम आस्पेक्ट्स ऑफ दि औपनिवेशिक एजुकेशनल सिस्टम⁸। उसका नाम माया भी है। इसका संबंध क्षणिक भौतिक भोगों से है। अविद्या जो भौतिक भोगों का नाम है, जो पतन का कारण है (कठ. उप.- 1/21-2)⁹ गीता में विद्या को श्रेय कहा गया है। (भी.प.-42/39-55)¹⁰

विद्या से ही अध्यात्म मार्ग सुलभ होता है तथा जन्म—मरण के बंधन भी कट जाते हैं। (कठ. उप.-1/2/1-21)¹¹

मनुष्य को जब तक सत्—असत् का ज्ञान नहीं होता है तथा जब तक वह संशयात्मा और अविवेकी बना रहता है, तब तक उसके लिए न तो लोक में सफलता मिलती है और न परलोक में ही। उनके सारे पुरुषार्थ भी नष्ट हो जाते हैं, परन्तु ज्ञान और प्रज्ञा के द्वारा वह अविवेक और संशय उच्छिन्न कर देता है। विद्या भौतिक सिद्धि और आध्यात्मिक शक्ति देने वाली है।

विद्या के बिना मनुष्य का व्यक्तित्व संकुचित और जीवन बोझिल होता है। अज्ञानता अंधकार के समान है। अतः अज्ञानी मनुष्य का जीवन अन्धकारमय है। उसके कार्यों की कोई महत्ता नहीं। जो कर्म विद्या, श्रद्धा और भोग से युक्त होकर किया जाता है वही प्रबलतर होता है। अतः ज्ञान से ही मनुष्य का जीवन आलोकित होता है। ज्ञान से व्यक्ति जीवन और जगत के रहस्यों को समझ पाने में समर्थ होता है। अतः विद्या के समान दूसरा कोई नेत्र नहीं। 'नास्ति विद्या समम् चक्षुः' संसार की समृद्धि और अभीष्ट की प्राप्ति ज्ञान पर ही अवलंबित रहती है। जीवन की समस्त बाधाएँ एवं कठिनाईयाँ ज्ञान के कारण समाप्त हो जाती हैं। 'सर्वस्य लोचनं शास्त्रं'। ऋग्वेद में विद्या को मनुष्य की श्रेष्ठता का आधार स्थीकार किया गया है। विद्या और ज्ञान की प्राप्ति से ही मनुष्य श्रेष्ठ और प्रतिष्ठित होता है। जीवन की समस्त लौकिक सुखों की प्राप्ति विद्या के माध्यम से ही संभव मानी गई है।

शिक्षा से मनुष्य का जीवन समृद्ध और उन्नत होता है उसकी बुद्धि और प्रज्ञा सुदृढ़ और प्रांजल होती है। विद्या विहीन मनुष्य को पशुवत कहा गया है। विद्या विहीनः पशुः। विद्या बिना मनुष्य का जीवन निरर्थक और सारहीन रहता है। इसके संयोग से बुद्धि प्रखर, बोध क्षमता विकसित और विवेक सम्पुष्ट होता है। विद्या ही इहलौकिक और पारलौकिक जीवन को सुखमय बनाता है। विद्या और ज्ञान के कारण ही चर्तुवर्ण में ब्राह्मणों को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। प्राचीन काल में अशिक्षित ब्राह्मण अपनी जीविका चला सकने में असमर्थ था।

शिक्षा प्रकाश का स्रोत है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सच्चे मार्ग का प्रदर्शन करता है। विद्या हमें परलोक में मोक्ष दिलाती है एवं जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सच्चे मार्ग का प्रदर्शन करती है। “सा विद्या या विमुक्तये” तथा इस संसार में समृद्धि और प्रगति। विद्या संशयों का उच्छेदन करती है— कठिनाईयों को दूर हटाती है तथा जीवन के वास्तविक महत्व को समझने योग्य बनाती है। विद्या द्वारा बुद्धि, बल और कार्य क्षमता में वृद्धि होती है। जिसके पास विद्यारूपी बल है वही सचमुच में बलवान है— ‘बुद्धिर्यस्य बलं तस्य’ शिक्षा से इतने लाभ होते हैं कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। विद्या से कीर्ति बढ़ती है— बाधाएँ नष्ट होती हैं। कल्पलता की भाँति वह हमारा मनोरथ सिद्ध करती है। विद्या के कारण हमारी योग्यता में वृद्धि होती है। विद्या द्वारा हम धार्मिक एवं लोक हित के पुण्य कार्यों की ओर प्रवृत्त होते हैं। विद्या से विनय की प्राप्ति होती है। (‘विद्या ददाति विनयम्’)

विद्या द्वारा हमें स्वच्छता और सदाचार का पाठ मिलता है। शिक्षा हमारे अंधविश्वासों को मिटाती है। दूसरे के दृष्टिकोण समझने में सहायक बनती है। शिक्षा से बुद्धि प्रखर बोध क्षमता विकसित और विवेक पुष्ट होता है। इस प्रकार जीवन में त्रुटियों से हमारी रक्षा होती है। विद्या हमारा नैतिक बल बढ़ाती है तथा जीवन में बड़े—से—बड़े प्रलोभनों के सम्मुख च्यूत न होने की शक्ति प्रदान करती है। सच्ची शिक्षा हमारे नैतिक तन्तुओं को विमल और पुष्ट करती है और इस प्रकार चंचल वासना और पक्षपात के मध्यर मार्गों को अडिग रहने की शक्ति प्रदान करती है। इस तरह शिक्षा से हमारा मानस उन्नत और विवेक सुदिष्ट होता है।

विद्या के प्रति अवधारणा—

महाभारत काल में विद्या के प्रति जो अवधारणा थी वह ज्ञानरूपी ज्योति को साधना के द्वारा प्राप्त करने से थी। कहा गया है कि जिसे ज्ञान की ज्योति उपलब्ध नहीं वह अंधा है। परिष्कृत बुद्धि ही सच्चा बल है। जिस तरह हमारी माता जन्म काल से ही रक्षा करती है और पिता निरंतर हितकार्य करते हैं, ठीक उसी तरह विद्या पत्नी की भाँति कष्टों को दूर करती है तथा प्रसन्नता देती है। विद्या कल्पलता की भाँति हमारे मनोरथों को सिद्ध करती रहती है।

विद्या किसी मानव को नहीं है तो वह पशु तुल्य है, विद्या ही हमें मनुष्य बनाती है इसीलिए विद्या से रहित हमारा जीवन व्यर्थ और मूल्यरहित है। भर्तृहरि का कहना है कि विद्याहीन मनुष्य पशु है। विद्या के महत्व को दर्शाते हुए अकारण गुरु का परित्याग करने वाले शिष्य को पतंजलि ने तीर्थ काक की संज्ञा दी है। प्राचीन भारतीयों की धारणा थी कि ज्ञान का क्षेत्र अनंत है। उसकी प्राप्ति के लिए कोई भी अवधि पर्याप्त नहीं है। तैतरीय ब्राह्मण में इस प्रसंग में मनोरंजक कथा आई है। जिस कथा का सारांश यही है कि तीन जन्मों तक अध्ययन क्या हुआ, तीनों वेदों का ज्ञान अनाज के ढेर से लिया गया तीन मुटिठ अनाज के अनुपात है। शेष ज्ञान तो अनाज के पहाड़ की भाँति अवशिष्ट है। संस्कृत—साहित्य में ऐसी अनेक सुकितयाँ हैं, जिनमें यह कहा गया है कि ज्ञान अनंत है, एक जीवन में सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता।

प्राचीन काल में पुरुषोत्तम राम ने विद्या के प्रति जो अवधारणा बनायी थी उसे उन्होंने पुष्ट किया है। वे गुरु विश्वामित्र के पास रहकर अस्त्र—शस्त्र विद्या तथा वेद विद्या को प्राप्त किया। विश्वामित्र जी से बला और अति बला विद्या को ग्रहण किया। छोटी अवस्था में राम ने विद्या के प्रति प्राचीन अवधारणा को यथावत् चलने दिया। विधिवत् अर्थ, धर्म और ज्ञान प्राप्त कर सभी धर्मशास्त्रों में पारंगत हो गये। आरंभिक काल में विद्या का अर्थ प्रकाश से था केवल पुस्तकी ज्ञान से नहीं। कहा गया है कि विभिन्न शास्त्रों का ज्ञान रहने पर भी यदि व्यक्ति में अंतर्दृष्टि का विकास नहीं हुआ तो उसे अंतर्ज्योति नहीं मिलेगी, वह अंधकार में ही रहेगा। क्रियावान पुरुष ही सच्चे अर्थों में शिक्षित है। एक विचारक का कथन है कि यदि कुछ शब्दों को रट लेने मात्र से शुक भी भोजन प्राप्त कर लेता है तो एक विद्वान भला कैसे भूखे मर सकता है। शिक्षा को कभी जीविका का साधन मात्र नहीं माना गया। प्राचीन भारत में ऐसे मत रखने वालों की निन्दा की गई है जो केवल इसे जीविका का साधन मात्र बताते हैं।

उपर्युक्त तथ्य का सारांश यह है कि प्राचीन भारत में शिक्षा का उद्देश्य अंधकार को मिटाकर प्रकाश को चतुर्दिक दिशा में स्थापित करना था और इसे एक शक्ति का स्रोत भी माना गया था जो शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्तियों के बीच

संतुलन स्थापित करते हुए विकास की ओर मानव को ज्ञान दृष्टि देती थी और यह शिक्षा मानव के स्वभाव में परिवर्तन लाती थी और उसे समाज में श्रेष्ठ मानव बनने का अवसर प्रदान करती थी। सही अर्थ में शिक्षा का अर्थ सर्वांगीण विकास ही है।

संदर्भ सूची—

1. शांतिपर्व— 317 / 9
2. ऋग्वेद—164—166
3. श. ब्रा.—2.2.26
4. अ.वे. 11.5.26
5. ते. स. 6.3.16
6. शत्र ब्रा.— 11.5.7.5
7. मु. उ.— 3401 / 1 / 4
8. राय, बी. पी., सम आस्पेक्ट्स ऑफ दि औपनिवेशिक एजुकेशनल सिस्टम
9. कठ. उप.— 1 / 21—2
10. भी.प.—42 / 39—55
11. कठ. उप.—1 / 2 / 1—21

* * * * *